International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 149-151

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 149-151
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-05-2017
Accepted: 16-06-2017

राजेन्द्र भट्ट
शोधच्छात्रः कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड, भारत

Correspondence
राजेन्द्र भट्ट
शोधच्छात्रः कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड, भारत

संस्कृतसाहित्य की समृद्ध नाट्य परम्परा–एक विवेचन

राजेन्द्र भट्ट

प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की उत्पत्ति त्रेतायुग में ब्रह्मा जी के द्वारा की गयी थी। आचार्य भरतमुनि के अनुसार देवताओं की प्रार्थना पर मनोविनोदार्थ ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीति, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर 'नाट्यवेद' रूप पंचम वेद की रचना की।[1] ब्रह्मा ने अभिनय संकेत भी भरतमुनि को प्रदान किये। नटराज भगवान शंकर ने ताण्डव और जगदम्बा पार्वती ने लास्य नृत्य से नाट्य को अनुगृहीत किया और भारत–भू पर इन्द्रध्वज महोत्सव पर नाट्य का सर्वप्रथम अभिनय हुआ। इस प्रकार भारतीय परम्परा में नाटकोत्पत्ति को दैवी परम्परा मानती है।

नाट्य में संवाद और अभिनय का ही प्राधान्य होता है। भारत के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में संवाद के स्थल हैं, जिन्हें संस्कृत नाटकों का मूल कहा जा सकता है। इन संवादों में यम–यमी संवाद[2], पुरुरवा–उर्वशी संवाद[3], सरमा–पणि संवाद[4], इन्द्र–इन्द्राणी व वृषाकपि संवाद[5], इन्द्र–मरुत् संवाद[6], विश्वामित्र–नदी संवाद[7] तथा अगस्त्य एवं उनकी पत्नी लोपामुद्रा का संवाद[8] प्रमुख है।

इस प्रकार ऋग्वेद में लगभग पन्द्रह ऐसे सूक्त हैं, जिनमें दो या अधिक वक्ताओं के बीच सम्भाषण प्रस्तुत किया गया है। संवाद ही नाट्यशास्त्र का प्राथमिक रूप है और बाद में उनको अभिनय का पुट दिया गया है। यहाँ पर कुछ विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं–

1. पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर का मत है कि कथित संवाद सूक्त इन्द्र मरुत् तथा अन्य देवताओं की स्तुति में उनके अनुयायियों द्वारा यज्ञ के समय गाये जाते थे।
2. सिलवाँ लेवी का कथन है कि सामवेद काल में गान–कला अपने विकास की चरम सीमा पर थी, और)ग्वेद में सुन्दर परिधान पहनकर स्त्रियों द्वारा अपने प्रेमियों को आकृष्ट करने का उल्लेख भी है। अतः उनका मत है कि यज्ञादि के अवसर पर नाट्याभिनय अवश्य होता होगा।[9]
3. जर्मन विद्वान् डा0 हर्टल ने इन सूक्तों को गेय मानकर यह निरूपित किया कि इन गेय सूक्तों को एक से अधिक व्यक्ति मिलकर गाते थे। इस प्रकार वक्ताओं की विभिन्नता हो जाती थी, जिसने नाट्याभिनय को प्रेरित किया।
4. डा0 विडिम, ओल्डेनवर्ग एवं पिशेल का अनुमान है कि ये सूक्त पहले गद्य–पद्यात्मक थे, ऐतरेय–ब्राह्मण कर शुनःशेप का आख्यान और शतपथ ब्राह्मण का पुरुरवा–उर्वशी आख्यान इस प्रकार के अंश के प्रमाण हैं।

अतः इन्हीं से नाट्य का उद्भव हुआ है। म0ए0वी0 कीथ ने इसका खण्डन किया है, उनका मानना है कि नाट्य की तात्त्विक स्थिति वेद में अवश्य है किन्तु यह बीज रूप में है। मैक्समूलर, [10] लेवी [11] और ओल्डेनबर्ग[12] प्रभृति विद्वानों ने वेदों में प्रयुक्त इस प्रकार के संवादात्मक सूक्तों को आधर मानकर भारतीय नाट्यकला की उत्पत्ति वैदिक युग में सिद्व की है। इन विद्वानों के अनुसन्धानों का परीक्षण कर और वेदमन्त्रों में बिखरे हुए तत्सम्बन्धी सूक्तों का सिंहावलोकन कर डा0 दासगुप्ता भी इस अभिमत से सहमत हैं कि वेदमन्त्राों में नाटकीय तत्त्व प्रचुर रूप में विद्यमान हैं, और तत्कालीन जन–जीवन के धर्मिक अवसरों, संगीत–समारोहों तथा नृत्योत्सवों से नाटक का घनिष्ठ सम्बन्ध था। [13]

संस्कृत के नाटकों की अति प्राचीनता के सम्बन्ध में ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद में भी कुछ विस्तार से चर्चा की गयी है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के एक प्रसंग से अवगत होता है कि वैदिक युग में एक 'शैलूष' नामक जाति के लोग व्यवसायिक रूप से नाटकों का आयोजन कर जीविकोपार्जन किया करते थे। इस प्रसंग में बताया गया है कि यज्ञ के अवसरों पर नृत्य–गीतादि के लिए सूत और शैलूष लोगों की नियुक्ति की जाती थी, जो कि नृत्य एवं संगीत द्वारा नाट्याभिनय करते थे। [14]

इन प्रसंगों के सम्बन्ध में डा. दासगुप्ता का कथन है कि यद्यपि वैदिक युग में नाटकीय तत्त्व प्रचुर रूप में प्रचलित थे, तथापि इनका अनुशीलन कर नहीं कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज के अथवा उक्त प्रसंगों में उद्धृत सूत और शैलूष लोग नाटक नियमों से पूर्णतया अभिज्ञ थे।

हमें वेदमन्त्रों के किसी भी प्रसंग में पात्रों का वर्णन और नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली के कहीं भी दर्शन नहीं होते, फिर भी कदाचित् यह सम्भव है कि तत्कालीन धार्मिक अवसरों से नाट्य कला का गर्भस्थ शिशु की भाँति सम्बन्ध रहा हो, जिसका कि पूर्ण विकास नहीं हो सका था। [15]

उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य में नाटकों एवं नाट्यकला की शिल्पविधियों का पूरा इतिहास दृष्टिगोचर होता है। अष्टाध्यायी, रामायण, अर्थशास्त्र, बौद्वजातक और महाकाव्यों आदि में नाट्य कला के विभिन्न अंगों, उसके पात्रों और पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। रामायण काल की अयोध्या नगरी में नाटक–मण्डलियॉं पूर्ण ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। नट–नर्तक लोगों का उस समय कापफी प्रचार भी हो चुका था। 'रामायण' के एक प्रसंग में कहा गया है कि नटों, नर्तकों और गायकों की मण्डलियों की कर्ण–सुखद वाणियों को जनता पूरी तन्मयता से सुनती थी। [16]

महर्षि वाल्मीकि का कथन है कि शासकीय जनपद में 'नट' और 'नर्तक' प्रसंग नहीं दिखाई देते। [17] आाचार्य महावैयाकरण पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में हमें भिक्षुसूत्रों और नटसूत्रों के प्रणेता पाराशर्य शिलालि तथा कृशाश्व नामक दो प्राचीन आचार्यों का केवल नाम ही देखने को मिलता है। [18]

वैयाकरण पाणिनि ने 'जाम्बवती विजय' नामक नाटक लिखा था–

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरण प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।

अत एव यह स्पष्ट है कि कालिदास से पूर्व अनेक नाटक लिखे गये परन्तु अधुना वे उपलब्ध नहीं है। सम्प्रति उपलब्ध नाटकों के आधर पर भारतीय नाटककारों में महाकवि भास के नाटक सबसे प्राचीन हैं।

रामायण और अष्टाध्यायी के अनन्तर महाभारत में नाटकों के शिल्प सम्बन्धी विधानों का अधिक स्पष्ट स्वरूप मिलता है। 'हरिवंश' जो महाभारत का ही एक अंश है, कि प्रद्युम्न विवाह प्रसंग में निर्देश किया गया है कि वसुदेव जी के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भद्र नामक एक नट ने अपने आकर्षक नाट्य–प्रदर्शन से उपस्थित ऋषि–महर्षियों को प्रसन्न किया था, जिसके फलस्वरूप उसने आकाश में विचरण करने तथा स्वेच्छया रूप धारण करने का वरदान प्राप्त किया था। [19] महाभारत में 'रामायण नाटक' और 'कौबेर–रंगाभिसार' नामक दो नाटकों का भी नाम मिलता है। [20] महाभारत में नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। [21]

'अर्थशास्त्र' के प्रणेता आचार्य कौटिल्य का मत है कि कलाओं के अतिरिक्त जितनी भी ललित कलाएं थी, उनकी शिक्षा–दीक्षा के लिए उस समय राज्य की ओर से पूरा प्रबन्ध था। अर्थशास्त्रकार ने एक सुगठित राज्य व्यवस्था के लिए विधान दिया है कि उसमें गणिका, दासी, अभिनेत्राी, गायिका आदि के लिए चित्राकारी, वीणावादन, मृदंगवादन, गन्धनिर्माण और शरीर– शृंगौंरादि की जो चौसठ प्रकार की कलाऍं हैं, उनके शिक्षण के लिए राज्य की ओर से सुयोग्य आचार्यों का प्रबन्ध होना चाहिए। [22] अर्थशास्त्र से ही यह भी जानने को मिलता है कि उस समय नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव, प्लवक ;रस्सी पर खेल दिखाने वाले, सौमित्र ;ऐन्द्रजालिक और चारण आदि की विभिन्न मण्डलियॉं गा–बजाकर और नाटक करके जीविकोपार्जन किया करती थी। इन मंडलियों को राज्य में प्रविष्ट होने से पूर्व निर्धारित राजकर ;म्दजमतजंपदउमदज ज्मगद्ध भी अदा करना पड़ता था, जो प्रत्येक खेल के लिए पाँच पण निर्धारित था। [23]

बौद्वकाल में नाट्यकला का भारतव्यापी प्रचार हो चुका था, 'विनयपिटक' के 'चुल्लवग्ग' की कथा में बताया गया है कि अश्वजित् और पुनर्वसु नामक दो भिक्षु एक बार जब कीटागिरी की रंगशाला में अभिनय देखने के बाद एक नर्तकी के साथ प्रेमालाप करते पकड़े गये तो विहार के महास्थविर ने उन्हें तत्काल विहार से निष्कासित कर दिया था। [24] इसी प्रकार वैयाकरण पतंजलि के 'महाभाष्य' में दो नाट्य–कृतियों का निर्देश मिलता है, जिनका नाम कंसवध और बालिवध है। डा0 कीथ का कथन है कि पतंजलि के समय तक नट केवल नर्तक ही नहीं रह गये थे, वरन् वे संगीतज्ञ भी हो गये थे। [25] इसलिए यह निर्विवाद सत्य है कि संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की परम्परा बहुत पुरानी है और आदिकाल से ही भारतीय जन–जीवन के मनोरंजन के लिए नाटकों को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में अपनाया जाता रहा है। आचार्य वामन ने नाटक को प्रथम स्थान दिया है, उनका कथन है कि कथा आख्यायिका आदि के पात्र नाटक के सजीव पात्रों की भाँति अभिनय करते हुए दृष्टिगत होते हैं, तभी काव्य रस की वास्तविक उपलब्धि संभव है। [26] आचार्य भरत मुनि भारतीय नाट्यशास्त्र के आदि प्रवर्तक हैं। आचार्य भरत मुनि के अनुसार नाट्य नामक पंचम वेद तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है,[27] और यह केवल मनोविनोद का साधन नहीं, बल्कि पवित्र सारस्वत यज्ञ है– 'यज्ञेन सम्मितं ह्येतद् रंगदैवतपूजनम्। तस्मात्सर्व प्रयत्नेन, कर्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः। [28] कविकुलगुरु कालिदास ने भी ''देवानामिदमामन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्।' कहकर आचार्य भरत मुनि के ही मत का समर्थन किया है। आचार्य भत के अनुसार एक ओर जहाँ सार्ववर्णिक नाट्यवेद के स्रष्टा स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं, [29] वहीं ताण्डव तथा लास्य नृत्यों के उद्भावक भगवान शिव एवं पार्वती। [30] इतना ही नहीं, भारती–सात्वती–कैशिकी एवं आरभटी वृत्तियों के जनक भी स्वयं भगवान विष्णु हैं।

पंचम नाट्यवेद के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम, शान्ति, युद्व, क्रीडा, हास्यादि का समावेश रहता है। नाट्यवेद न केवल धर्मात्मा ज्ञानियों की चर्चा करता है, और न ही किसी विशिष्ट वर्ग के लिए किया गया है वरन् वह कामुकों के लिए कामसेवन, दुर्विनीतों के लिए निग्रह की सामग्री, क्लीबों के लिए क्लीबत्व तथा शूरवीरों के उत्साह की भी इसमें व्यवस्था रहती है, नाटक में मूर्खों की मूर्खता, विद्वानों की विद्वत्ता, धनिकों के विकास, दुःखार्तो के लिए आश्वासन, अर्थलिप्सुओं को अर्थोपलब्धि के उपाय, आर्तजनों के लिए भाणादि ऐसे विभिन्न विषयों का समावेश एक साथ रहता है, जिसमें असमान प्रकृति के लोग अपने–अपने भावों तथा अपनी–अपनी रुचियों, समस्याओं एवं अवस्थाओं का पूरा चित्र ;दृश्य अपनी आँखों से देख सकें। [31] जिससे दुःखार्त अपने दुःख को, श्रमार्त अपने श्रमजनित कष्ट को, शोकार्त्त अपने शोक को विश्राम देकर और आनन्दित होकर परम सुख को प्राप्त करता है। [32] आचार्य भरत के अनुसार सभी प्रकार के मनुष्यों का अनुकरण होने के कारण नाटक में सभी प्रकार का ज्ञान, शिल्प, विधाएं, कलाएं और शास्त्र समन्वित रहते हैं। वह वेद विद्या है, इतिहास है और उसमें श्रुति स्मृति, सदाचार तथा सबको विनोद प्रदान करने के साधन भी विद्यमान रहते हैं–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। [33]

सर्वशक्तिमान् जगत्पिता ब्रह्मा ने 'नाटक' नामक पंचम वेद की रचना की और उसके अभिनय का पूरा दायित्व महामुनि भरत को सौंप दिया। स्त्री पात्रों के लिए अनिंद्य सुन्दरी अप्सराओं की रचना की गयी, रंगशाला की साज–सज्जा का सारा दायित्व कलागुरु विश्वकर्मा ने स्वीकार किया। उसमें सर्वप्रथम 'असुरपराजय' फिर क्रमशः 'अमृतमन्थन' और 'त्रिपुरदाह' आदि नाटक अभिनीत हुए। [34] 'नाट्यशास्त्र' के इन उल्लेखों से पता चलता है कि भरतमुनि के समय में ही नट, नटी, नृत्य, वाद्य, संगीत, संवाद, कथावस्तु और रंगमंच आदि का निर्माण हो चुका था। [35] नाटक परम्परा में नाट्य उत्पत्ति के सम्बन्ध में पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों की एक जैसी धारणाएं, एक जैसे अनुसन्धान हैं। भरतमुनि ने नाटक का प्रयोजन जिन दुःखार्त्त, श्रमार्त्त एवं शोकार्त्त जनों की संतुष्टि के लिए बताया है, वहीं बात यूनान के युगद्रष्टा विद्वान अरस्तू ने भी कही है। [36]

नाट्यविषयक पाश्चात्य विद्वानों के अभिमत–

डॉ. रिजवे नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण वीरपूजा को माानते हैं। उनका कहना है कि दिवंगत वीर पुरुषों की स्मृति में समय–समय पर जो उनके प्रति सामूहिक सम्मान प्रदर्शित किया जाता था, उसी से नाटक का जन्म हुआ। ग्रीक और भारत में मृतवीरों के प्रति पूजाभाव प्रदर्शित करने के तरीके लगभग एक जैसे थे, भारत में रामलीला एवं कृष्णलीला इस प्रवृत्ति के परिचायक है।[37] डा. रिजवे के विपरीत डा. कीथ का अभिमत है कि प्राकृतिक परिवर्तनों को जनसाधरण के समक्ष मूर्तरूप में प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति ने ही नाटकों को जन्म दिया। 'महाभारत' में निर्दिष्ट 'कंसवध' नाटक के सम्बन्ध में डा. कीथ का कहना है कि इस नाटक का मुख्य उद्देश्य वसन्त ऋतु की विजय दिखाना था, और कृष्ण का विजय प्रसंग उद्भिज जगत् के भीतर चेष्टा दिखलाने वाली जीवन–शक्ति का प्रतीक मात्र था। [38]

जर्मन विद्वान् डा. पिशेल पुत्तलिका नृत्य से नाटक की उत्पत्ति सिद्व करते हैं। डा. पिशेल के मतानुसार इस नृत्य का जन्मदाता भारत था और वहीं से विश्व भर में इसका प्रचार–प्रसार हुआ। [39] डा. कोनो छाया नाटकों से नाटकों का आरम्भ मानते है। [40] किन्तु सम्पूर्ण साहित्य में सुभट कवि का एकमात्र छाया नाटक 'दूतांगद' ही उपलब्ध होता है। अतः भारतीय नाटकों के सम्बन्ध पर भी नाटकों का उदय मानते हैं। [41] यह नृत्य पश्चिमी देशों में मई मास में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसकी समानता भारत में इन्द्रध्वजोत्सव से मिलती है। [42]

लौकिक संस्कृत साहित्य में नाटकों की व्यवस्थित परम्परा का प्रवर्तन महाकवि भास से होता है, भास के व्यक्तित्व की महिमा कालिदास ;प्रथम शताब्दी ई.पू. वाण ;सातवी शदी दण्डि ;सातवी शदी भामह ;सातवीं शदी वाक्पतिराज ;अष्टमशती वामन ;आठवीं शदी राजशेखर ;नवम शदी और अभिनवगुप्त ;दसवीं शदी इत्यादि काव्यकारों एवं काव्यशास्त्रियों की रचनाओं में सर्वत्रा बिखरी हुई थी। [43] उन्नीसवी शताब्दी में अम्बिकादत्त व्यास, मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक एवं वाचस्पति भट्टाचार्य का विशेष योगदान है। महाकवि भास के तेरह नाटकों को 1909 ई. में श्री टी. गणपति शास्त्राी ने 'त्रयोदश त्रिवेन्द्रम नाटकानि' नाम से प्रकाशित किया था। [44] तदनन्तर नाटकों का प्रणयन अनवरत अद्यावधि पर्यन्त प्रवाहमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
   यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।नाट्यशास्त्र, 1.17
2. ऋग्वेद, 10.10
3. ऋग्वेद, 10.95
4. ऋग्वेद 10.108
5. ऋग्वेद, 10.86
6. ऋग्वेद, 1.165,170
7. ऋग्वेद, 3.33
8. ऋग्वेद, 1.79
   कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ. 15–16
   मैक्समूलर : वर्जन ऑपफ दि .ऋग्वेद प्रथम भाग, पृ. 173
9. Le Theater Indian 'Bibliothique de Icole des-Haits Etudes Fascicule 83 पृ. 307–308
10. एच. ओल्देनबर्गः जैड डी एम जी, 32, पृ. 54, 39, पृ. 52
11. डॉ0 एस0एन0 दासगुप्ता एण्ड एस0 के0 डे0: हिस्ट्री ऑपफ संस्कृत लिटरेचर भाग–1 पृ. 44,
12. प्रसंग इस प्रकार हैः– नृत्त ;ताल–लय नर्तन के लिए सूत को, गीत के लिए शैलूष ;नट को, धर्म व्यवस्था के लिए सभाचतुर को, मनोरंजन के लिए विनोदशीलों को, श्रृंगार रचना ;सज्जा के लिए कलाकारों ;निर्देशकों को, समय बिताने के लिए राजकुमारों को, चातुर्य प्रदर्शन के लिए रथकारेां को और धैर्ययुक्त कार्यों के लिए बढ़ई को नियुक्त किया जाता था। यजुर्वेद–संहिता, अध्याय 30 मन्त्र सं. 6
13. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर भाग–1, पृ.सं. 46–47
14. नटनर्तकसंघानां गायकानां च गीयताम्।
15. यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।। रामायण,.....
16. नीराजने जनपदे पहृष्टनटनर्तकाः।
    रामायण, 2.67.15
17. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। 4।3।110, कर्मन्दकृशाश्वादीनि 4।3।111 अष्टाध्यायी
18. महाभारत, हरिवंशपर्व, 91–97 अध्याय
19. महाभारत, वनपर्व, 15.13
20. संस्कृत साहित्य का इतिहास, अध्याय–प्रचार, अध्याय 41
21. कौटिल्यः अर्थशास्त्र, अध्यक्ष प्रचार, अध्याय 41
22. तत्रैव, अध्याय 27
23. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.स. 674, एवं काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ. 91
24. संस्कृत ड्रामा, पृ.सं. 45
25. काव्यालङ्कारसूत्र, 1.3.30–32
    त्रौलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्। नाट्यशास्त्र, 1. 107
26. नाट्यशास्त्र, 1.128
27. वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
28. एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना।। भरतनाट्यम्, 1.18
29. नाट्यशास्त्र, 4.258, 266
30. तत्रैव, 9.108–113
31. दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
32. विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतत् भविष्यति।। नाट्यशास्त्र 1. 115
33. नाट्यशास्त्र, 1.109
34. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 677
35. हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास, पृ.सं. 18
36. आन दि आर्ट ऑफ दि पोएट्री, पृ.सं. 35
37. ड्रामा एण्ड ड्रामैटिक डांसेज ऑफ नॉन यूरोपियन रेसेज ;संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ.सं. 678
38. संस्कृत ड्रामा, पृ.सं. 45–48 तथा थ्योरी ऑफ वेजिटेशन स्पिरिट'
39. थ्योरी ऑफ पेपेट शो, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 678
40. दास इण्डिस्के ड्रामा, पृ.सं. 45–46
41. मे–पोल–थ्योरी
42. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 678
43. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ.सं. 89–91
44. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.स. 679